International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 30-11-2019; Accepted: 31-12-2019
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 1; January 2020; Page No. 87-89

हिन्दी नाटकों में स्त्री चेतना

नेहा शर्मा

शोधार्थी, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, भारत

सारांश

हिन्दी नाट्य साहित्य विभिन्नताओं का युग है। यह युग सिर्फ पुरुष जाति के उत्थान का युग नहीं अपितु स्त्री के उत्थान एवं प्रगति और साहस को दर्शाता है। आज विकास का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जो स्त्री से अछूता हो। न सिर्फ भारत में अपितु विश्व में स्त्रियों ने अपनी विजय पताका फहरायी है परंतु इतिहास की दृष्टि से देखा जाए तो पुरुष ने स्त्री के साथ कभी भी न्याय नहीं किया। पुरुष के उत्पीड़न और अन्याय से विश्व साहित्य भरा पड़ा है। समय के साथ स्त्रियों ने शिक्षा प्राप्त करते हुए स्वयं को चेतना सम्पन्न किया साथ ही अपने बराबरी के अधिकार के लिए संघर्ष करती हैं। जिसकी झलक साहित्य कि अन्य विधाओं के साथ ही हिन्दी नाटकों में भी दिखता है। आज जरूरत इस बात की है कि स्त्री को समाज में समान अधिकार मिले तभी नारी जाति गर्व से अपना मस्तक ऊंचा कर पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर समाज की उन्नति में अपनी भूमिका अदा कर सकेगी।

मूलशब्द: साहित्य, नाटक, स्त्री, चेतना इत्यादि।

प्रस्तावना

प्राचीन भारत में महिलाओं को जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ बराबरी का दर्जा हासिल था। वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा दी जाती थी। ऋग्वैदिक ऋचाएं यह बताती है कि महिलाओं की शादी परिपक्व उम्र में होती थी। और संभवतः उन्हें अपना पति चुनने की भी आजादी थी। ऋग्वेद और उपनिषद जैसे ग्रंथ से कई महिला साध्वियों और संतों के बारे में पता चलता हैं। वैदिक काल में महिलाओं को बराबरी का दर्जा और अधिकार मिलता था हालांकि बाद में लगभग 500 ईसा पूर्व में स्मृतियों विशेषकर मनुस्मृति के साथ महिलाओं की स्थिति में गिरावट आनी शुरू हो गयी और बाबर एवं मुगल साम्राज्य के इस्लामी आक्रमण के साथ और इसके बाद ईसाइयत में महिलाओं की आजादी और अधिकारों को सीमित कर दिया गया।

महिलाओं की स्थिति में मध्ययुगीन काल के दौरान और अधिक गिरावट आई जब भारत के कुछ समुदायों में सती प्रथा, बाल विवाह और विधवा पुनर्विवाह पर रोक, सामाजिक ज़िंदगी का एक हिस्सा बन गयी थी। भारतीय उपमहाद्वीप में मुसलमानों की जीत ने पर्दा प्रथा को भारतीय समाज में ला दिया, राजस्थान के राजपूतों में जौहर की प्रथा थी। इन परिस्थितियों के बाबजूद भी कुछ महिलाओं ने राजनीति, साहित्य, शिक्षा और धर्म के क्षेत्र में सफलता हासिल की। भक्ति आंदोलन ने महिलाओं की स्थिति में बेहतर मोड़ लाने का काम किया। जिसमें महिला संत कवयित्री मीराबाई भक्ति आंदोलन के सबसे महत्वपूर्ण चेहरों में से एक थीं। इसके पश्चात आधुनिक युग में कुछ अन्य कवयित्रियों मे महादेवी और सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम उल्लेखनीय है। इनके व्यक्तित्व और रचनाओं में विद्रोह और क्रांति का स्वर मुखरित हुआ।

हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर आज तक स्त्री के अनेक रूपों का वर्णन मिलता है। साहित्य में उसे अनेक रूपों में देखा गया है। प्रसाद ने स्त्री को श्रद्धा से विभूषित किया तो पंत ने उसे साथ चलने वाली सहचरी कहा। निराला ने स्त्री में शक्ति रूप देखा और महादेवी वर्मा ने स्त्री को करुणा के रूप में देखा। लेकिन दिनकर तक आते – आते वही स्त्री स्वच्छंद मुक्त भोगी अप्सरा बन गई। युगों-युगों में यात्रा करती हुई स्त्री समाज में मुख्य नायिका के रूप में अवतरित हुई है। जिस प्रकार हिन्दी काव्य, उपन्यास तथा साहित्य में स्त्री को विभिन्न रूपों में प्रतिपादित किया उसी प्रकार, नाटकों में भी स्त्री के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। स्त्री के नाट्य क्षेत्र की यह यात्रा स्त्री के जीवन की वास्तविक यात्रा है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने हिन्दी नाट्य साहित्य को गति प्रदान की। भारतेन्दु युग में सामाजिक रूढ़ियाँ अपनी चरम सीमा पर थी, अनेक समस्याओं ने अपने पैर फैला रखे थे। समाज में स्त्री की स्थिति दयनीय थी, उसे हीन दृष्टि से देखा जा रहा था। उसकी उपेक्षा की जाती थी तथा उसे शिक्षा और सम्मान से वंचित रखा जाता था। भारतेन्दु हरिश्चंद्र का मौलिक नाटक नीलदेवी (1881) में स्त्री न तो अबला बनकर हमारे सामने प्रकट होती है और न ही पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगी हुई। वह अपने घर को संभालती है लेकिन पर्दे से बाहर निकलकर। वह अपने आप को बेबसी से मुक्ति दिलाकर स्वयं में परिवर्तन लाती है और अपने पति की हत्या का बदला लेती है। अपनी अकर्मण्यता को त्याग कर अपने आप को बदलने की कोशिश करती है।

भारतेन्दु युग के नाटककारों ने स्त्री की हीन-दशा को प्रस्तुत करके उसकी स्वतन्त्रता और अधिकारों का समर्थन किया। 'दुखिनी बाला' नाटक में राधाकृष्ण दास जी की नायिका सोचती है – "यदि बाल-विवाह न हुआ होता तो क्यों न मैं अपनी भलाई-बुराई को समझ कर अपनी इच्छानुसार जीवन जीती"।[1]

कलि-कौतुक (1886) नाटक में प्रतापनारायण मिश्र ने वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक बुराई को नाटक का आधार बनाया है। वेश्यागमन से पैदा हुई बुराइयों को और घर में स्त्री उपेक्षा का चित्र प्रस्तुत किया है कि किस तरह अपमान को चुपचाप सहन करके वह स्त्री के आदर्श से अपने आप को उबार नहीं पाती। बालकृष्ण भट्ट के 'जैसा काम वैसा परिणाम' (1913) नाटक में स्त्री जागरूक है वह अपने पति द्वारा प्रताड़ित किए जाने पर डट कर उसका सामना करती है और नाटकीय ढंग से अपने पति को सही रास्ते पर लाती है।

प्रसाद युग में स्त्री की स्वतन्त्रता और स्त्री शिक्षा का द्वंद्व भारतेन्दु काल की तरह चल रहा था परंतु फिर भी स्त्री की स्वयं के अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता बढ़ी। अब धीरे-धीरे स्त्री वर्ग में शिक्षा का महत्त्व बढ़ रहा था। शिक्षित स्त्री अपनी सुरक्षा और अधिकारों की सुरक्षा के लिए प्रयास कर रही थी। वे उन रूढ़ियो को तोड़ देना चाहती थी, जो उनकी हीन दशा के लिए जिम्मेदार थी तथा उन स्त्रियों में भी जागृति लाने का प्रयास करती है, जो अभी भी रूढ़ियों और परम्पराओं के मोह में फंसी हुई थी।

प्रसाद जी की स्त्री का प्रेम पवित्र है तथा सागर की तरह गहरा और गंभीर है। इसमें वासना का कोई स्थान नहीं है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की योजना में स्त्री की स्वतन्त्रता, स्त्री और पुरुष के संबंध, विधवा विवाह, तलाक आदि युग के प्रश्न समाए हुए हैं। शिक्षा के प्रचार प्रसार के प्रभाव के कारण स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागृत हो गयी थी। पुरुष के अत्याचारों का विरोध करने का साहस उसमें पैदा होने लगा था। समाज में चल रहे इस संघर्ष के प्रत्युत्तर में प्रसाद जी ने कहा – "भारतीय भावना में विवाह एक प्रतिज्ञा है, जिसमें द्वंपत्ति एक-दूसरे की सहायता और सहयोग का संबल लेकर साथ चलते हैं अन्यथा विवाह न रहकर खेल हो जाता है"।[2] प्रसादयुगीन नाटकों में स्त्री पत्रों में अंतर्द्वंद दिखाई देता है। इस अंतर्द्वंद

का कारण कहीं प्रेम है तो कहीं देवी और आसुरी मनोवृति इसका कारण है। प्रसाद के पूर्व नाटकों में इस अंतर्द्वंद में कमी देखने को मिलती है। प्रसाद के नाटकों में स्त्रियाँ कथा सूत्रों का संचालन करती हैं। इनके नाटकों में स्त्रियाँ ही पुरुषों की प्रेरणादायिनी शक्ति है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में स्त्री की महानता को प्रस्तुत किया है।

प्रसादोत्तर युग के नाटककारों ने समाज, संस्कृति, सभ्यता की जड़ों को खोखला करने वाली कुरीतियों पर प्रहार करके व्यक्ति मन की कुंठाओ का विश्लेषण किया। लक्ष्मीनारायण मिश्र जी ने समस्या नाटकों का विकास किया। इन्होंने अपने समय के अभावों और बुराइयों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। इनके नाटकों में स्त्री का संघर्ष, आत्मसम्मान, चातुर्थ प्रेम तथा त्याग और दुर्बलता हृदय को छूने वाले चित्र उपलब्ध होते हैं। इनके ऐतिहासिक नाटकों की स्त्रियों में आधुनिक बोध देखने को मिलता है।

मिश्र जी के स्त्री पात्रों में बौद्धिकता है। परिस्थितियों के अनुसार काम करना और अपने हृदय और बुद्धि में संतुलन बनाकर रखना उनकी उपयोगितावादी दृष्टि सिद्ध करता है। ये क्रांति का खंडन करती है तथा सामाजिक व्यवस्था को विघटित करने का प्रयत्न करती है। आधुनिक शिक्षा प्राप्त की हुई और आधुनिक रंग में रंगी हुई ये स्त्रियाँ अपनी तर्कशक्ति में विश्वास रखती हैं। ये बौद्धिक स्तर पर अपने आप को पुरुषों से कम नहीं समझती।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने अपने नाटक 'स्वर्ग की झलक' (1940) में शिक्षा से प्राप्त की गयी प्रवृतियों का विश्लेषण किया है तथा स्त्री पर उसके पड़ने वाले कुप्रभावों को स्पष्ट किया है। अश्क जी के 'अलग-अलग रास्ते' नाटक में रानी और 'उड़ान' नाटक की नायिका माया दोनों एसे स्त्री पात्र हैं, जो न केवल पुरानी रूढ़ियों से विद्रोह करते हैं, बल्कि उनकी दीवारों को तोड़कर निकालने की शक्ति भी रखते हैं। इन स्त्री पात्रों के माध्यम से भविष्य की स्त्री की झलक देखने को मिलती है। 'अलग-अलग रास्ते' की रानी अपने पति से प्रेम और सम्मान अपने पिता के मोटर और मकान के बल पर नहीं, अपनी योग्यता के बल पर मान पाना चाहती है। अपनी बहन से कहे हुए उसके ये शब्द एक चुनौती देते है: "मैं लाख प्यार करती पर इस अपमान के बाद कभी वहाँ नहीं जाती"।[3] और न केवल पति को बल्कि पिता को भी छोड़कर चली जाती है। 'उड़ान' की माया अपने पति के साथ उसकी सहचरी के रूप में साथ रहना चाहती है इसी कारणवश वह अंत में अपने पति को यह कहकर छोड़कर चली जाती है कि –

"तुम एक दासी, खिलौना या देवी चाहते हो,
संगिनी की तुम में से किसी को आवश्यकता नहीं"[4]

पृथ्वीनाथ शर्मा ने अपने नाटक 'साध' में स्त्री की उस स्थिति को दर्शाया है जो वैवाहिक जीवन को बंधन मानती हैं, और माँ बनने से इंकार करती है। भुवनेश्वर जी एसी स्त्री की कल्पना करते हैं जो आनंदपूर्ण जीवन जीती हैं या आनंद न करने के लिए पश्चाताप करती है। उनकी नज़र में स्त्री और पुरुष के बीच की कड़ी आर्थिक रूप से जुड़ी रहती है या उनके सम्बन्धों में कामुकता रहती है। इनके नाटकों में स्त्रियॉं पुरुषों के साथ फ्लर्ट करती है लेकिन उन पुरुषों के साथ जो उनसे विवाह नहीं करते है। वे उन पुरुषों से विवाह करती है जो उनके साथ फ्लर्ट नहीं करते।

वृन्दावन लाल वर्मा ने ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाटकों में स्त्री के विविध आयामों को प्रस्तुत किया है। उदयशंकर भट्ट ने पौराणिक कथा 'विद्रोहिणी अम्बा' के द्वारा हिन्दू विवाह पद्धति का विरोध करने वाली जागरूक स्त्री के विद्रोह के संघर्ष को प्रस्तुत किया है। 'कमला' नाटक में वृद्ध विवाह के विरुद्ध रोष प्रकट किया है। भट्ट जी ने इस प्रथा को अभिशाप माना है और इसके शिकंजे में आने वाली स्त्री को समाज की सेवा करने का आदर्श प्रस्तुत किया है।

इक्कीसवीं सदी स्त्री के प्रगति एवं उत्थान की है। वह हर क्षेत्र में चुनौतियाँ स्वीकार कर रही है। वह अपने अधिकारों और कर्तव्यों से भली भांति परिचित है। अब वह पुरुषों की दासी नहीं वरन सहचरी के रूप में कंधे से कंधा मिलाकर पुरुषों का साथ दे रही है। आज स्त्री ने अपने अर्धांगिनी शब्द को सार्थक सिद्ध कर दिया है। 1947 के बाद भारत के सविधान में स्त्री को मत देने का अधिकार हो गया। राष्ट्र के निर्माण में स्त्री का योगदान भी होने लगा। उसके परिणाम स्वरूप स्त्री चेतना का उदय हुआ। स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में स्त्री के परिवर्तित रूप के दर्शन होते हैं अर्थात स्त्री पुरानी परम्पराओं का परित्याग कर नए आयाम प्रस्तुत कर रही है। आर्थिक और बौद्धिक रूप से सक्षम आज की स्त्री किसी प्रकार से भी पुरुषों से कम नहीं है। वह पुरुषों की दासी न होकर उसकी सहगामिनी के रूप में आगे बढ़ रही है। आर्थिक और शैक्षणिक सुदृढ़ता के कारण उसके स्वाभिमान में बढ़ोतरी हुई है। लेकिन कई बार उसका यही अहम उसके जीवन को कुंठित कर देता है। स्त्री का यह अहम भी नाटकों में देखने को मिलता है।

डॉ लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक 'गंगा माटी' की नायिका गंगा एक सुशिक्षित ब्राह्मण कन्या है वह अपने अधिकारों के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक है। वह अपनी गुलामी किसी प्रकार सहन नहीं कर सकती तथा गाँव की अनेक अबलाओं को उनके अस्तित्व की पहचान कराने के लिए आगे बढ़ती है। उसी गाँव का एक पुरुष उसे गाँव का कलंक मानता है। क्योंकि वह छुआछूत नहीं मानती उसके प्रति उत्तर में गंगा कहती है – "क्या इस गाँव की स्त्री लोहे की मशीन है जो तुम्हारे यंत्र-नियम के अनुसार चलेगी? मैं जो सही समझती हूँ, करूंगी"।[5] 'गंगा माटी' की गंगा के चरित्र से छुआछूत की भावना से ऊपर उठने की प्रेरणा मिलती है। अधिकांशतः स्त्रियों में छुआछूत की भावना होती है परंतु गंगा ब्राह्मण है। फिर भी वह छुआछूत नहीं स्वीकार करती और गाँव की स्त्रियों में प्रकाश स्तम्भ स्थापित करती है।

'अंधा कुआं' नाटक की नायिका अदम्य साहस का परिचय देती है। 'अंधा कुआं' का नायक भगौती जब बांझपन के कारण अपनी पत्नी सूका को मारता पीटता है उसको तिरस्कृत करता है तब उसकी इस दुर्दशा को उसकी देवरानी सहन नहीं कर पाती और उसके प्रति हो रहे अत्याचार का विरोध करती है। राज़ी अशिक्षित और ग्रामीण होते हुए भी एक सजग स्त्री के रूप में प्रस्तुत होती है। वह सूका को भगौती के अत्याचारों से बचाना चाहती है इस पर भगौती उससे कहता है- देख राज़ी! कान खोल कर सुन, समझ बूझकर घर गृहस्थी में पैर रखना, नहीं गेहूं के साथ घुन भी पिस उठता है। इस पर राज़ी साहस से जेठ का मुकाबला करती है और कहती है – " तुम भी कान खोल के सुन लो मैं सूका दीदी नहीं हूँ की तुम्हारी सहूँ। मैं ब्याह कर इस घर में आई हूँ"।[6]

इस प्रकार 'अंधा कुआं' की राज़ी का चरित्र समाज में एक नया संदेश लेकर आता है। स्त्रियों में नयी चेतना जागृत करता है कि भारतीय स्त्रियों पर सदियों से हो रहे अत्याचारों को, एक स्त्री ही उसका प्रतिशोध लेकर अन्य के विरुद्ध आवाज़ उठा सकती है। डॉ लक्ष्मीनारायण लाल ने 'मादा कैक्टस' के माध्यम से एक नया आयाम प्रस्तुत किया है। नाटक में अरविंद का कहना है कि स्त्री का संसर्ग पुरुष को कमजोर बना देता है और उसके विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है। लेकिन आज की विकासशील स्त्री सुजाता इस बात को सिद्ध कर देती है कि यदि पुरुष स्त्री का संबल न भी बने तो वह विकास के मार्ग से विचलित नहीं होगी अपितु पुरुष का तिरस्कार उसके जीवन में एक नया मोड़ ला देता है।

मोहन राकेश के 'आधे-अधूरे' नाटक की नायिका 'सावित्री' नौकरी करके परिवार को, घर को किसी तरह चलाती है। 'आषाढ़ का एक दिन' की नायिका 'मल्लिका' अपना सर्वस्व समर्पित करके कालिदास को महान कवि के रूप में देखती है। 'लहरों के राजहंस' की नायिका 'सुंदरी' नन्द को अपने सौन्दर्य आकर्षण से, प्रणय के बंधन से बांध रखना चाहती है। वह कहती है –"नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।"[7]

गिरिराज किशोर के नाटक 'प्रजा ही रहने दो' की द्रौपदी जागरूक नारी है जो पथ प्रदर्शिका और प्रेरणा के रूप में अपने पति के सम्मुख प्रस्तुत होती है। कुंती से आज्ञा लेते हुए वह कहती है- 'मेरी वही सीमा आ गयी जहां शील, संकोच, भय सब समाप्त हो जाता है। मुझे आज्ञा दें,मैं आपके सोये हुए पुत्रों की आत्मा को पुनः जागृत करूंगी। राजा बनने के बाद जिनकी पहचान समाप्त हो गयी थी उसे मैं फिर से कराऊँगी। द्रौपदी अपने अपमान का बदला लेना जानती है। अपनी सास से वह कहती है - "स्वर्ण मृग पालने का ऐश्वर्य महारानी सीता के ही अनुरूप था। मैं यदि कोई स्वप्न पालूँगी तो अपने अपमान के प्रतिशोध का। मेरे चीर हरण के

समय कौरवों की स्त्रियाँ हंस रही थी। अब मैं रुदन की बानगी भी देखना चाहती हूँ। तब तक मेरा कोई न पति होगा न भाई न ससुर और न संबंध"।[8] चोट खाई हुई स्त्री पूर्णत विद्रोहिणी बन जाती है। उसका सोया हुआ स्वाभिमान जागृत हो जाता है। प्रस्तुत नाटक से हमें यह संदेश मिलता है कि यदि द्रौपदी की तरह समाज की किसी भी स्त्री का अपमान किया गया तो वह चुपचाप सहन नहीं करेगी। अपितु उस अपमान का बदला लेगी। ऐसा नाटक से प्रतीत होता है कि पुराणकाल में भी स्त्रियों में अपने स्वाभिमान के प्रति चेतना का भाव था और आज भी है।

विनोद रस्तोगी ने अपने नाटक 'नये हाथ' में स्त्री को जन्मजात स्वतंत्र माना है भारतीय स्त्री की ऐसी विडम्बना रही है कि वह प्रारम्भ से ही पुरुष की दासी के रूप में प्रस्तुत हुई है लेकिन 'नये हाथ' की शालिनी स्त्री की स्वतंत्र तथा पुरुष की हर क्षेत्र से समानता करने वाली मानती है। वह किसी की गुलामी नहीं कर सकती। वह कहती है – "भगवान ने स्वतंत्र पैदा किया है फिर जान बूझकर जंजीरों में क्यों बंधू"।[9] प्राचीनकाल में स्त्री का स्थान पुरुष के बाद था उसका मुख्य कारण था आर्थिक असमानता। वह पुरुष की भांति बाहर निकलने में अक्षम थी इसके कारण उस पर अनेक अत्याचार व जुल्म ढाय गए परंतु अब ऐसा नहीं है। समय के बदलते परिवेश में स्त्री आकाश की ऊंचाइयों को छू रही है। किसी भी क्षेत्र में वह पुरुष से पीछे नहीं है।

जगदीश चंद्र माथुर के नाटकों में स्त्री का प्रेरिका रूप और प्रेमिका रूप उभर कर सामने आता है। स्त्री चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है विष्णु प्रभाकर के नाटक "अब और नहीं" में। इसकी मंजरी मल्लिका से कहती हैं – "पुरुष अपने खोल के भीतर सदा सामंतवादी रहता है। निर्दयी, अधिनायक, क्रूर और अनुदार, कविता की भाषा में उसका पर्याय है स्वामी प्राणनाथ, जीवनदायी आदि"।[10]

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में स्त्री का जहां स्वाभिमानी स्वरूप मिलता है वही उसके परिवर्तित, जागृत, स्वतंत्र जीवन का उत्कृष्ट रूप भी देखने को मिलता है। प्रगतिशील स्त्री की चेतना, साहस और संघर्ष को देखकर मन में यह भाव उठा करते है –

इन चिंगगारियों से मत उलझना
नहीं तो तुम भी स्वाहा हो जाओगे
यदि उन्हे जलाओगे
तो क्या तुम बच पाओगे।

इसलिए आवश्यकता है कि इक्कीसवी सदी की स्त्री अन्याय और अत्याचारों के विरुद्ध साहस के साथ आवाज उठाए और समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपना योगदान देते हुए सम्पूर्ण विश्व को प्रगति पथ की और ले जाए। स्त्रियों में चेतना आवश्यक है ताकि समाज में फैली हुई विकृतियों का अंत हो सके और समाज को एक नयी दिशा मिल सके। समाज प्रगति पथ पर अग्रसर हो सके तभी देश,समाज और राष्ट्र का विकास हो सकेगा।

संदर्भ सूची

1. नारी चेतना – रमन खटीक प्रकाशन ग्लोबल अकेडमिक पब्लिशेर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटेर्स, दरियागंज,नई दिल्ली पृ॰ सं॰ 7, 8, 27
2. प्रभा आप्टे, भारतीय समाज में नारी पृ॰ सं॰ 226
3. डॉ मीना पाण्डेय, साठोत्तर हिन्दी नाटकों में नारी की दशा और दिशा पृ॰ सं॰ 19
4. डॉ रमेश गौतम, भारतेन्दु युगीन नाटक *:* संदर्भ सापेक्षता, पृ॰ सं॰ 16
5. डॉ दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास पृ॰ सं॰ 219
6. डॉ इंद्रनाथ मदान, हिन्दी नाटक और रंगमंच लिपि प्रकाशन कृष्ण नगर दिल्ली 110051 पृ॰
7. सं॰ 57
8. इंटरनेट -
9. www.abhivyakti.hindi.orgnatak
10. http/hin.wikipedia.org